ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 02, May 2019

औपनिवेशिक कुमाऊँ में ईसाई मिशनरी गतिविधियाँ और उसका प्रभाव

[1]**डा0 ज्योति साह**

[2]एसोसियेट प्रोफेसर, 'इतिहास', दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीतापुर

Received: 08 May 2019, Accepted: 11 May 2019 ; Published on line: 15 May 2019

Abstract

कुमाऊँनी समाज विभिन्न संस्कृतियों और समाजों से बना है। प्राचीन जनजातीय समूह शौका, वनराजि, थारू, बोक्सा, गूजर और शिल्प से जुड़े शिल्पकार समूह यहाँ के प्राचीनतम निवासी हैं। यहाँ प्राचीन जनजातीय समूह, शिल्पकार और मध्यकाल में आयी विभिन्न सवर्ण जातियाँ, हिन्दू, बौद्ध, इस्लामी और प्राकृतिक धर्मों के पूजक एकसाथ निवास कर रहे थे। औपनिवेशिक शासन के दौरान यह समाज ईसाई धर्म और संस्कृति के सम्पर्क में आया। कुमाऊँ के ईसाई समाजपर बद्रीदत्त पांडे, शिवप्रसाद डबराल और ब्रिटिश गजेटियरों आदि और वर्तमान में आर.एस.टोलिया[1] के द्वारा प्रकाश डाला जा चुका है। तथापि इस शोध पत्र द्वारा कुमाऊँ में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के प्रसार तथा कुमाऊँनी समाज पर उसकी प्रतिक्रिया को विश्लेषित किया गया है, साथ ही मिशनरी गतिविधियों के प्रति औपनिवेशिक सरकार की नीति की व्याख्या भी की गयी है।

मुख्य शब्द–समाज, ईसाई मिशनरी, जैसुइट, कम्पनी की नीति,मिशनरी गतिविधियां,आर्य समाज

Introdution

अकबर और जहाँगीर के दरबार में जैसुइट पादरियों का आगमन और धर्म की व्याख्या उत्तरी भारत में प्रारम्भिक मिशनरी गतिविधियाँ थीं।[2] अकबर के समय फादर एन्थनी मान्सरेट ने सन् 1590 में हिमालय का पहला नक्शा प्रस्तुत किया था।[3] तत्पश्चात 17वीं शताब्दी में ईसाई धर्म के प्रचार हेतु जैसुइट मिशनरियों के कई दल उत्तराखण्ड के विभिन्न भागों से होकर तिब्बत तक जाते रहे। शिव प्रसाद डबराल के अनुसार हिमालय में आये प्रारम्भिक जैसुइट मिशनरियों की रूचि तिब्बत के लामा धर्म में थी, जिसे वह ईसाई मत का समझते थे और मानते थे कि तिब्बती ईसाई मत के सिद्धान्त को भूल चुके हैं, अतः उन्हें पुनः ईसाई धर्म में दीक्षित करना है।[4] जैसुइट के इन्हीं अभियानों और उसके

बाद के यूरोपीय पर्यटकों के विवरणों से आकृष्ट होकर कम्पनी सरकार ने कुमाऊँ पर आधिपत्य के लिए प्रयास प्रारम्भ किए थे और सन् 1816 में कुमाऊँ औपनिवेशिक शासन के अधीन हो गया था।[5]

औपनिवेशिक काल में कुमाऊँ में मिशनरी गतिविधियों के विषय में जानने से पूर्व भारत में उनके प्रसार पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। 18वीं सदी के अन्तिम दशकों में यूरोप में प्रोटेस्टेंट मत के प्रसार हेतु अनेक संस्थाओं की स्थापना हुयी। इनमें बाप्टिस्ट मिशनरी सोसाइटी(1792), लण्डन मिशनरी सोसाइटी(1795), चर्चमिशनरी सोसाइटी (1799) तथा वेसलियन मेथोडिस्ट मिशनरी सोसाइटी (1813) और अमेरिका की अमेरिकन बोर्ड ऑफ कमिश्नर्स फॉर फॉरेन मिशन्स(1810) आदि प्रमुख थीं। यह प्रोटेस्टेंट मिशनरी तीव्रता से यूरोपीय उपनिवेशों में धर्मप्रचार के लिए प्रयत्नशील थे। इनका प्रभाव ब्रिटिश संसद पर पड़ा और उपनिवेशों में इन मिशनरियों के प्रवेश और अधिकारों के प्रति 1793 से 1813 तक संसद में बहस और प्रस्ताव पारित होने लगे।[6] परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी थी और उसका साम्राज्य विस्तार का उद्देश्य भी आर्थिक हितों से जुड़ा था। उसने 1833 तक ईसाई धर्म प्रसार अथवा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप के प्रति पूर्ण उदासीनता दिखायी और मिशनरी गतिविधियों को प्रोत्साहन नहीं दिया।[7] यद्यपि 1793 में अंग्रेज बापटिस्ट मंत्री विलियम कैरी एक मिशनरी के रूप में भारत आया और उसने सीरमपुर, कलकत्ता आदि स्थानों पर मिशनरी कार्यों को किया। उसने बाइबिल का बंगाली, संस्कृत और अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया और सीरमपुर कॉलेज की स्थापना की[8] और दक्षिण भारत में भी 1805 से लण्डन मिशनरी सोसाइटी सक्रिय थी। तथापि कम्पनी ने मिशनरी कार्यों के प्रति पूर्ण उदासीनता दिखायी। 1813 और 1833 के चार्टर द्वारा कम्पनी के अधिकारों में कटौती और भारत के प्रशासनिक मामलों में संसद के हस्तक्षेप सेकम्पनी की मिशनरी गतिविधियों सम्बन्धी नीति में भी परिवर्तन आया। ब्रिटिश समाज भी धर्म प्रसार के पक्ष में दबाव बना रहा था। फलतः 1850 तक भारत में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियाँ, जिनमें ईसाई धर्म के प्रसार के साथ–साथ स्वास्थ्य, शिक्षा और परोपकारी कार्य भी सम्मिलित थे, तीव्र होने लगीं।[9]

कम्पनी की नीति कुमाऊँ में भी प्रारम्भ में सम्पूर्ण भारत के समान धार्मिक मामलों में पूर्ण तटस्थता की थी। कमिश्नर ट्रेल (1815–1835) ने तटस्थता की नीति का पूर्णतः पालन किया। उसके शासनकाल में 1825 में कलकत्ता के तीसरे बिशप रेगिनाल्ड हेबर का अल्मोड़ा आगमन हुआ, परन्तु उनका भ्रमण केवल पर्यटन तक सीमित रहा, ईसाई धर्म प्रसार या अन्य मिशनरी गतिविधियाँ पूर्णतः वर्जित रहीं। कमिश्नर लुशिंगटन (1838–1848) के कार्यकाल में भी कुमाऊँ में ईसाई मिशनरी

गतिविधियाँ नगण्य रहीं। कुमाऊँ में 1848 में बैटन के कमिश्नर बनने और प्रान्त के लैफ्टिनेंट गर्वनर जेम्स थामसन के ईसाई धर्म प्रसार के प्रति लगाव ने कुमाऊँ में मिशनरी गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। कमिश्नर बैटन ने रेवरेण्ड जॉन हेनरी बडन को अल्मोड़ा में मिशनरी कार्य के लिए सहमत कर लिया। हेनरी बडन लंदन मिशनरी सोसाइटी से जुड़े थे और मिर्जापुर मेंकार्य कर रहे थे। लंदन मिशनरी सोसाइटी से अनुमति प्राप्त कर हेनरी बडन ने कैप्टेन रैमजे के सहयोग और कमिश्नर बैटन की अध्यक्षता में जुलाई, 1850 में कुमाऊँ मिशन की स्थापना की। कुमाऊँ में कार्यरत ईसाई अधिकारियों ने कुमाऊँ मिशन के व्यय भार को वहन किया।[10] इसकी प्रारम्भिक सदस्यता सूची में तत्कालीन प्रमुख अधिकारी जॉन स्ट्रैची, जेम्स थामसन, जनरल सर रिचर्डस, जॉन म्योर, जी. लारेन्स आदि थे। इस प्रकार ईसाई प्रशासनिक अधिकारी खुलकर मिशनरी गतिविधियों को समर्थन देने लगे।

कमिश्नर हेनरी रैम्जे (1856–1884) का कार्यकाल ईसाई धर्म के प्रसार और प्रचार के लिए खुला समर्थन काल था। बद्री दत्त पांडे ने 'कुमाऊँ का इतिहास' में लिखा है कि रैम्जे चाहते थे कि सारा कुमाऊँ ईसाई हो जाए।[11] कमिश्नर रैम्जे के सहयोग से कुमाऊँ मिशन के कार्यों को रेवरेण्ड हेनरी बडन 1887 तक करते रहे, तत्पश्चात उसकी पुत्री मेरी बडन ने मिशनरी कार्यों को जारी रखा।

1857 में पादरी बटलर के नेतृत्व में अमेरिकी मैथोडिस्ट मिशन नैनीताल आया। पादरी बटलर ने अमेरिका से आए अन्य पादरियों रेवरेन्ड हम्फ्री और रेवरेन्ड राल्फ पिमर्स आदि को 1858 में नैनीताल में एकत्र कर एक स्कूल की स्थापना की। अगस्त, 1858 में नैनीताल में मैथोडिस्ट मिशन की स्थापना हुयी। यहाँ कमिश्नर रैम्जे ने हिन्दुस्तानी चैपल के भवन की नींव रखी, जो मैथोडिस्ट मिशन का भारत में पहला प्रार्थना घर बना। कमिश्नर रैम्जे के सहयोग से कुमाऊँ मिशन औरअमेरिकी मैथोडिस्ट मिशन के मिशनरी कार्योंने कुमाऊँ में धर्मप्रचार तथा परोपकार के क्षेत्र में कई उल्लेखनीय कार्य किए।

ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था और इसके लिए उन्होंने परोपकारी कार्यों को साधन बनाया था। दूरस्थ और दुर्गम स्थानों पर कुष्ठ आश्रम, अनाथालयों, शिक्षण संस्थाओं और अस्पतालों की स्थापना की गयी। हेनरी रैम्जे ने अल्मोड़ा में कुष्ठ आश्रम स्थापित किया था, जो 1851 में लंदन मिश्नरी सोसाइटी को हस्तांतरित कर दिया गया। 1864 में पहला धर्मपरिवर्तन कुष्ठ रोगी मुसना का हुआ, तत्पश्चात 1865 में 17 कुष्ठ रोगियों ने ईसाई धर्म की दीक्षा ली। 1931 तक लगभग 700 कुष्ठ रोगियों का धर्म परिवर्तन कर दिया गया।[12] कुमाऊँ मिशन के मिशनरियों की रूचि

कुष्ठ आश्रमों के विकास में थी। अमेरिकी मैथोडिस्ट मिशन ने अनाथालयों की स्थापना करने में अधिक रूचि ली। दरअसल कुमाऊँ में अमेरिकी मैथोडिस्ट मिशन की स्थापना 1857 की क्रान्ति के दौरान ही हुयी थी और 1858 में मृतक सिपाही के तीन बच्चों के साथ अमेरिकन मिशन ने नैनीताल में अनाथालय की स्थापना की।[13]

मिशनरी गतिविधियों में शिक्षण संस्थाओं की स्थापना भी प्रमुख कार्य था। 1854 में मिशनरियों को सरकार द्वारा पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार हेतु अनुदान दिये जाने की व्यवस्था की गयी, जिसका लाभ उठाते हुए कुमाऊँ में मिशनरियों ने अनेक विद्यालयों की स्थापना की। 1851 में अल्मोड़ा में स्थापित मिशन स्कूल, जिसे 1886 में रैम्जे कॉलेज नाम दिया गया, अल्मोड़ा में मिशनरी कार्यों और पाश्चात्य शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बना। 1851 में स्थापना के वर्ष में ही इसकी छात्र संख्या 87 थी। 1858 में नैनीताल में मिशन स्कूल की स्थापना हुयी। पौड़ी में 1866 में पादरी थोबर्न ने मैसमोर कॉलेज की स्थापना की। शीघ्र ही द्वाराहाट, चंपावत, पिथौरागढ़ और जोहार आदि दूरस्थ स्थानों पर मिशनरी स्कूलों की स्थापना हो गयी।[14] प्रारम्भ में मिशन स्कूलों में शिल्पकारों ने ही प्रवेश लिया था। मिशन के छात्रावास स्कूलों में इनके बच्चों को रहने और पढ़ने की सुविधा मिली। चर्च के बराबरी के अनुभव ने भी शिल्पकारों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। [15] कुमाऊँ में स्त्री शिक्षा का भी प्रारम्भ मिशनरियों द्वारा ही किया गया।

मिशनरियों ने स्वास्थ्य सेवाओं के प्रसार हेतु अस्पतालों की स्थापना भी की। 1870 में अमेरिकन मेथोडिस्ट चर्च ने पूरी तरह प्रशिक्षित महिला डॉक्टर क्लारा स्वैन को बरेली में स्वास्थ्य सेवा शुरू करने के लिए भेजा। 1884 में मेरी रीड भारत आयीं और उन्होंने पिथौरागढ़ मे स्वास्थ्य कार्यों का प्रारम्भ किया। 1890 में मिस एनी बडन ने डॉ. हरकुआ विल्सन और विशप थाबर्न की सहायता से धारचुला और चौदांस में भी अस्पतालों की स्थापना की। नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, पौड़ी, द्वाराहाट, रानीखेत आदि ईसाई समुदाय के प्रमुख स्थान बन गये। ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से अनेक क्षेत्रों में व्यक्तियों और परिवारों ने ईसाई धर्म में दीक्षा ली। 1864–65 में कुष्ठ रोगियों की बपतिस्ता के बाद 1867 में शिल्पकार वर्ग का एक ओड़ ख्याली ईसाई बना।[16] डबराल के अनुसार 1872 में गढ़वाल में 297 ईसाई थे।[17] 1910 तक गढ़वाल में ईसाईयों की कुल संख्या 800 हो गयी।[18] अल्मोड़ा में कई ब्राह्मण परिवारों जोशी, पंत, पांडे और सनवाल परिवार के लोगों ने भी ईसाई धर्म अपनाया।[19] जोहार

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 02, May 2019

में उत्तम सिंह धर्म स्वीकारने के बाद ईसाई धर्म प्रचारक बने।[20] इस सबके बाबजूद वर्तमान में कुमाऊँ में ईसाईयों की संख्या मात्र 2 प्रतिशत है।[21]

ईसाई मिशनरी अपने समस्त प्रयासों के बाबजूद स्थानीय जनता का ईसाई धर्म में रूपान्तरण नहीं कर सके। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो हिमालय के इस क्षेत्र की अपेक्षा उत्तर पूर्वी हिमालय में मिशनरियों ने जनजातीय समाज नागा, खाशी, गारों और मिजो जनजातियों में ईसाईयत के प्रसार में अधिक सफलता प्राप्त की, जबकि वहाँ वे 1876 के पश्चात पहुँचे थे। उत्तराखण्ड के विभिन्न जातीय और जनजातीय समाज को ईसाई मिशनरी प्रभावित न कर सके। इसके कारणों की पड़ताल की जाये तो कारण यहाँ के समाज और संस्कृति में ही अन्तर्निहित हैं, ईसाई मिशनरियों के प्रयासों में कोई कमी नहीं थी।

उत्तराखण्ड चार धाम, पंच केदार, पंच बदरी, पंच प्रयाग, नन्दा देवी, सलाना जात, राज जात, विभिन्न मंदिरों में लगने वाले मेले, देव यात्राओं आदि के कारण हिन्दू धर्म का तीर्थ स्थल था। कुमाऊँ में तीर्थ यात्रियों, विशेष रूप से हिन्दू धर्म के प्रमुख विचारकों और दार्शनिकों का, निरन्तर आगमन स्थानीय जन को हिन्दू संस्कृति से गहनता से जोड़ा हुआ था, जिसे ईसाई बनाना सम्भव नहीं था। थोबर्न ने स्वयं लिखा था कि श्रद्धालु हिन्दू अपने धर्म के प्रति इतने आस्थावान होते हैं कि उनको धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करना असम्भव सा है।[22] यहाँ की अनेक जातियों–जनजातीयों के मध्य विविधता होते हुए भी उन्होंने एक दूसरे के कुछ तत्वों को अपना लिया था और हिन्दू दशर्न के किसी न किसी पक्ष से उनका सम्बन्ध था।

औपनिवेशिक साम्राज्य का यद्यपि प्रारम्भ में यहाँ स्वागत किया गया, परन्तु 19वीं सदी के अन्त तक स्थानीय जनता औपनिवेशिक शासन के वास्तविक स्वरूप से परिचित हो गयी और उसने इसको अपने जीवन और संसाधनों पर हमला माना। धर्म प्रचारकों, प्रशासकों तथा यूरोपीय पर्यटकों द्वारा जिस प्रकार स्थानीय समाज पर कुली बेगार[23] जैसी अमानवीय प्रथा थोपी गयी थी, उसने स्थानीय समाज को उनके और उनके धर्म के प्रति आकृष्ट करने के स्थान पर प्रतिरोधात्मक रवैया अपनाने को मजबूर किया। सरकार की वन नीति[24] ने भी जनता को ईसाई समाज के प्रति आक्रोशित किया। यूरोपियन समुदाय के लिए बसाए गए पर्यटक स्थलों में स्थानीय जनता के साथ जिस प्रकार का भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता था, वह ईसाई मिशनरियों के परोपकार के कार्यों के प्रति भी स्थानीय जन को

ISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 2, Issue 02, May 2019

शंकित करता था। अल्मोड़ा में एक व्यक्ति को बलात ईसाई बनाने की घटना से समाज में मिशनरियों और कमिश्नर रैम्जे के प्रति घृणा की भावना का प्रबल हुयी।

19वीं सदी के अन्त में रामकृष्ण मिशन और आर्य समाज के प्रसार ने स्थानीय जनता को अत्यन्त प्रभावित किया। विशेषरूप से स्वामी दयानन्द के शुद्धि आन्दोलन के प्रति आकर्षण होने लगा।[25] आर्य समाज मूलतः ईसाईयत और औपनिवेशिक शासन का विरोधी था। भारतीय संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से आर्य समाज द्वारा कुमाऊँ मे भी विद्यालयों की स्थापना की गयी। नैनीताल में 1912, दोगड्डे में 1910, काशीपुर में 1900 और रामगढ़ में 1939 में आर्य समाज ने विद्यालय स्थापित किये।[26] कुमाऊँनी समाज अंग्रेजों के आगमन से पूर्व ही शिक्षित था। सन् 1840 में बैरन ने लिखा था– कुमाऊँ का हर एक व्यक्ति चाहे वह गरीब ही हो पढ़–लिख सकता है।[27] अंग्रेजों के आने से पहलेयहाँ 121 पाठशालाएँ संस्कृत और हिन्दी की थीं।[28] 1857 में कम्पनी सरकार ने शिक्षा विभाग की स्थापना कर पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार किया। सरकार और मिशनरियों द्वारा स्थापित विद्यालयों ने ईसाई धर्म के प्रति आकृष्ट करने के स्थान पर राष्ट्रवादी, लोकतंत्रात्मक और उदारवादी विचारों के प्रति जनता को आकृष्ट किया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से प्रभावित स्थानीय साहित्य और पत्रकारिता ने स्थानीय जनता को औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध संगठित होने के लिए प्रेरित किया। 19वीं सदी के अन्त से ही गुमानी, कृष्ण पांडे और शिवदत्त सती और गौर्दा जैसे कवि औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध जनता को जाग्रत करने लगे थे। 1878 में समय विनोद के साथ स्थापित स्थानीय पत्रकारिता अल्मोड़ा अखबार, गढ़वाली, शक्ति, स्वाधीन प्रजा आदि पत्रों के द्वारा औपनिवेशिक शासन के शोषणात्मक स्वरूप के प्रति जनता को आन्दोलित कर रही थी।

इन परिस्थितियों में ईसाई धर्म के प्रति जनता का लगाव होना सम्भव नहीं था। यूरोपीय संस्कृति के कुछ तत्वों का स्थानीय संस्कृति में समावेश तो हुआ, परन्तु ईसाई धर्म में पूर्ण रूपान्तरण न हो सका।

संदर्भ सूची–

1. टोलिया, आर.एस., इवेंजलिकलिज्म इन सैन्ट्रल हिमालयन डिस्ट्रिक्ट, 1815–2000, देहरादून
2. शर्मा, एस.आर., द रिलीजियस पॉलेसी ऑफ मुगल इम्परर्स, दिल्ली, 1988, पृष्ठ 19
3. पाठक, शेखर, हिमालय के द्वारों का खुलना, पहाड़–9, पहाड़ प्रकाशन, नैनीताल, 1998, पृष्ठ 16
4. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–8, 1978, पृष्ठ–147
5. पाठक, शेखर, हिमालय के द्वारों का खुलना, पहाड़–9, पहाड़ प्रकाशन,नैनीताल,1998, पृष्ठ 22
6. थॉमस,पी., चर्चेसइनइण्डिया, दिल्ली, 1964, पृष्ठ 6
7. टोलिया, आर.एस.,फाउण्डर्स ऑफ मार्डन एडमिनिस्ट्रेशन इन उत्तराखण्डः1815–1884, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 325–327
8. द टाइम्सऑफइण्डिया–
9. उत्तर प्रदेश में 1870 में बरेली, 1881 में आगरा में मिशनरियों द्वारा स्वास्थ्य सेवायें प्रारम्भ की गयीं।
10. टोलिया, आर.एस.,फाउण्डर्स ऑफ मार्डन एडमिनिस्ट्रेशन इन उत्तराखण्डः1815–1884, दिल्ली, 2009, पृष्ठ 328,
11. ओकले,इ.एस., होली हिमालय, नई दिल्ली, 1991, पृष्ठ 825
12. पांडे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, 1937, पृष्ठ 454–455
13. टोलिया,आर. एस., कुमाऊँ में ईसाई धर्म, पहाड़ 16–17, 2009, पृष्ट 331
14. उपरोक्त, पृष्ठ 332
15. पांडे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, 1937, पृष्ठ 485
16. पाठक, शेखर, उत्तराखण्ड में सामाजिक आन्दोलन की रूपरेखा, पहाड़ 2, पृष्ठ 97–98
17. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–7, 1978, पृष्ठ–18
18. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–8, 1978, पृष्ठ–111
19. टोलिया,आर. एस., कुमाऊँ में ईसाई धर्म, पहाड़ 16–17, 2009, पृष्ट 333
20. पांडे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, 1937, पृष्ठ 646
21. टोलिया,आर. एस., कुमाऊँ में ईसाई धर्म, पहाड़ 16–17, 2009, पृष्ट 333

22. नेगी, शरद सिंह, उत्तराखण्ड–लैण्ड एण्ड पीपुल, पृष्ठ 102
23. टोलिया,आर. एस., कुमाऊँ में ईसाई धर्म, पहाड़ 16–17, 2009, पृष्ट 334
24. पाठक, शेखर, उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, इसमें शोषणात्मक प्रथा पर विस्तार से बताया गया है।
25. गुहा, रामचन्द्र–द अनक्वाइट वुड–पृष्ठ–46
26. वर्नाक्यूलर प्रेस रिर्पोट, 1889, पृष्ठ 110–111
27. डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का इतिहास, भाग–8, 1978, पृष्ठ–118–119
28. पांडे, बद्रीदत्त, कुमाऊँ का इतिहास, 1937, पृष्ठ 484